UGC CARE LISTED
ISSN No. 2394-5990

इतिहासाचार्य वि. का. राजवाडे मंडळ, धुळे
या संस्थेचे त्रैमासिक

|| संशोधक ||

पुरवणी अंक १५ – मार्च २०२४ (त्रैमासिक)

- शके १९४५
- वर्ष : ९२
- पुरवणी अंक : १५

संपादक मंडळ

- प्राचार्य डॉ. सर्जेराव भामरे
- प्राचार्य डॉ. अनिल माणिक बैसाणे
- प्रा. डॉ. मृदुला वर्मा
- प्रा. श्रीपाद नांदेडकर

अतिथी संपादक

- डॉ. हेमलता काटे
- डॉ. एस. एस. पवार
- डॉ. विनायक राऊत

✷ प्रकाशक ✷

श्री. संजय मुंदडा

कार्याध्यक्ष, इ. वि. का. राजवाडे संशोधन मंडळ, धुळे ४२४००१
दूरध्वनी (०२५६२) २३३८४८, ९४२२२८९४७१, ९४०४५७७०२०
Email ID : rajwademandaldhule1@gmail.com
rajwademandaldhule2@gmail.com

कार्यालयीन वेळ

सकाळी ९.३० ते १.००, सायंकाळी ४.३० ते ८.०० (रविवारी सुट्टी)

अंक मूल्य रु. १००/-

वार्षिक वर्गणी (फक्त अंक) रु. ५००/-, लेख सदस्यता वर्गणी : रु. २५००/-

विशेष सूचना : संशोधक त्रैमासिकाची वर्गणी चेक/ड्राफ्टने 'संशोधक त्रैमासिक राजवाडे मंडळ, धुळे' या नावाने पाठवावी.

अक्षरजुळणी : सौ. सीमा शिंत्रे, पुणे.

टीप : या नियतकालिकेतील लेखकांच्या विचारांशी मंडळ व शासन सहमत असेलच असे नाही.

४६. **मराठी कादंबरीतील बदलती भाषा**

-श्री. विलास सखाराम सुर्वे -- १९६

४७. **व्यंकटेश माडगूळकर यांचे कथाविश्व**

-डॉ. नवनाथ गुंड -- १९९

४८. **'झुंज' या स्वकथनातील बदललेली भाषा व संस्कृती**

- १) श्री. देवीदास गेंदुजी मेटांगे, २) प्रा. डॉ. युवराज मानकर -------------------------- २०३

४९. **दलित कविताः भाषा आणि शैली**

- डॉ. सागर अशोक पाटील -- २०७

५०. **दलित साहित्यामधील बदलती भाषा आणि संस्कृती**

-डॉ.शैलजा श्रीधर शिंदे -- २१०

५१. **मराठी कादंबरीतील बदलती भाषा व संस्कृती: स्टॅला कादंबरीच्या अनुषंगाने**

– डॉ. भक्ती गोविंद महाजन -- २१४

५२. **मराठी ग्रामीण कादंबरीतील बदलती भाषा आणि संस्कृती**

– डॉ. शर्मिला बाळासाहेब घाटगे -- २१७

५३. **मराठी शाब्द लोकसाहित्यातील बदलती भाषा व संस्कृती**

- डॉ. कु.कोकिळा हनुमंत चांगण -- २२१

५४. **ग्रंथालयात सोशल नेटवर्कीगचा वापर व जागरूकता**

-प्रा.अनिल शिवाजी पाटील -- २२५

५५. **मनुष्य के अस्तित्व को चित्रित करता उपन्यास 'धर्मक्षेत्रे कुरुक्षेत्रे' बदलती संस्कृति का परिचायक**

-डॉ. हेमलता काटे -- २३०

५६. **संस्कृति का बदलता रुप और लीलाधर जगूडी की कविता**

-प्रो.(डॉ.)विनायक बापू कुरणे -- २३३

५७. **हिंदी भाषा और काव्य का बदलता स्वरूप**

-प्रा.अश्विनी जगदीप थोरात -- २३६

ISSN No. 2394-5990

संस्कृति का बदलता रुप और लीलाधर जगूडी की कविता

प्रो.(डॉ.)विनायक बापू कुरणे
अध्यक्ष, हिंदी विभाग
बाळासाहेब देसाई कॉलेज, पाटण जि. सातारा
मेल आडी -kurnevinaya@rediffmail.com
मो. नं.9604749881

संस्कृति का भारतीय समाज में अनोखा स्थान है। संस्कृति मानव जीवन तथा सामाजिक जीवन को नियंत्रित करनेवाली एक महत्त्वपूर्ण व्यवस्था है। मनुष्य के साथ साथ सामुहिक जीवन को सुखी समृद्ध एवं हितकर बनाने के लिए जिन रुढ़ियों, रिती-रिवाजों, प्रथाओं और संस्थाओं को विकसित किया गया वह संस्कृति है। विशाल शब्दसागर में ङ्कसंस्कृतिफ की व्याख्या इस प्रकार दी है - ''किसी व्यक्ति, जाति, राष्ट्र आदि की वे सब बातें जो उसके मन, रुचि, आचार-विचार, कला-कौशल और सभ्यता के क्षेत्र में बौध्दिक विकास की सूचक होती है।''[1] भारतीय संस्कृति की आत्मा निस्पृहता, त्याग, वैराग्य, ज्ञान, मोक्ष, के रुप में स्थापित है । वसुधैव कुटुंबकम का भाव भारतीय संस्कृति में बसा हुआ है । आज आधुनिक काल में पूर्व के सारे सांस्कृतिक प्रतिमान भारतीय समाज में प्रवेश कर चूके है । जिससे सांस्कृतिक विघटन की प्रक्रिया तेजी से बढ रही है । निस्पृहता, त्याग, वैराग्य, ज्ञान, मोक्ष जैसे नैतिक मूल्यों के प्रति उपेक्षा का भाव देखा जा रहा है। संस्कृति की बदलते प्रवाह का प्रतिबिंब समकालीन कवियों की कविताओं दिखाई देने लगा है । समकालीन कवियों में प्रमुख हस्ताक्षर के रुप में लीलाधर जगूडी का नाम जाना जाता है । 1980 के बाद के रचनाकारों लीलाधर जगूड़ी ऐसे कवि हैं जो आधुनिक मूल्यहीन समाज में मानवता पर आए संकटों से जूझते दिखाई देते हैं। भय भी शक्ति देता है, शंखमुखी शिखरों पर, इस यात्रा में, रात अब भी मौजूद है, बची हुई पृथ्वी, नाटक जारी है, घबराए हुए शब्द, अनुभव के आकाश में चाँद, खबर का मुँह विज्ञापन से ढँका है, महाकाव्य के बिना, ईश्वर की अध्यक्षता में आदि काव्य संग्रह जगूड़ी के प्रसिद्ध हुए है । जगूड़ी की कविताओं में परिवेश की सच्चाई के साथ मानवीय संवेदनाएं भारी हुई हैं।

प्राचीन भारतीय परंपरा और संस्कृति का इतिहास गौरवशाली है । भारतीय सांस्कृतिक परिवेश को मूल रूप से निस्पृहता, त्याग, वैराग्य, ज्ञान, मोक्ष, जैसे सांस्कृतिक इकाइयों के रूप में जाना जाता था । परंतु आज सांस्कृतिक परमपरा खंडित हो चुकी है। प्राचीन भारतीय परंपरा का गौरव समाप्त प्राय:-सा है । क्योंकि माता-पिता अपनी संतानों को परिवार में ही संस्कृति के पाठ पढाते थे । आज आधुनिक जीवन शैली के कारण माता-पिता के पास संस्कार करने के लिए समय नहीं है । संतानों में भावनाओं के बीज परिवार में ही बोये जाते थे । लीलाधर जगूडी सांस्कृतिक विघटन को व्यक्त करते हुए लिखते हैं-

''इन बच्चों को कुछ दो,
पत्नी कहती है समय दो संस्कार दो,
बहुत दिनों से हमने कुछ भी नहीं दिया है
बच्चों को ।''[2]

महानगरों में देहाती लोग रोजी रोटी के तलाश में आते है । देहात में अपनापन, सरलता, संबंधों की ऊष्मता जैसी संस्कृति में उनका जीवन गुजरा रहता है । महानगरों में आते ही ग्रामीण संवेदना को छोड़ व्यक्ति महानगर की गति के साथ भागता है । केवल पैसा कमाना उसका उद्देश्य रहता है । महानगर में लोकजीवन विलुप्त होने से संस्कृति की उपेक्षा होती है । महानगर में सरलता, अपनापन, संबंधों की ऊष्मता समाप्त होती जा रही है । लीलाधर जगूड़ी इसी भाव को चित्रित करते हुए लिखते है -

''लोकगीतों के बिना जो एक गद्यमय
लोकजीवन दिखता है ।
जिसकी सारी सुस्त नज़दीकियाँ खो गई हैं
और खो गई हैं रही सही देहाती देह भी
जो केवल पैसा कमाता हुआ दिखता है ।''[3]

प्राचीन भारत में आबादी कम थी और प्राकृतिक संपदा भरी हुई थी । लोगों के पास सभ्यता और संस्कृति थी । आज बढती आबादी के कारण सीमेंट कंक्रीट के जंगल में मनुष्य रहने लगा है । मनुष्यों की बाढ़ में आदमी अकेला है । बढते हुए महानगरों के कारण सांस्कृतिक परिवेश पूरी तरह से बदल चुका है । मनुष्यों में संवेदना, संस्कृति, तथा मूल्य नष्ट हो रहे हैं । कवि कहते है -

''बाल जो हजारों प्रकार के जीवन से हरा-भरा
लाखों करोड़ों घर जैसा था
कम मनुष्यों वाला ज्यादा मनुष्यता के साथ
वहाँ अब सभ्य मनुष्यों का जंगल है चारों ओर
अकेले पौंधे जितने, कम जंगल के साथ ।।''[4]

बाजारवादी संस्कृति तेजी से बढ रही है । स्त्री पुरानी संस्कृति के जोखड तोड चुकी है । घरों से बाहर निकलकर कुछ कमा रही है । उसके हाथ में रुपया खनक रहा है । सभ्य समाज में ये सफल स्त्रियाँ साबुन, पाउडर, क्रीम का इस्तेमाल करके नुमाइश की चीज बन रही है । नई स्त्रियाँ ही आर्थिक स्त्रियाँ मान ली गई हैं । कवि जूगडी बदलती बाजारवादी संस्कृति का चित्रण करते हुए लिखते है -

''जो सफल और सभ्य समाज में
साबुन, पाउडर, क्रीम और हिंसक खिलौनों में बदल जाती हैं
जिन्हें पुरानी स्त्री के मैल से पैदा नई स्त्रियाँ बेचती हैं
क्योंकि नई स्त्रियाँ ही आर्थिक स्त्रियाँ मान ली गई हैं''[5]

शहरी सभ्यता, पश्चिमी संस्कृति और औद्योगिकीकरण के परिवेश में बाजारवादी संस्कृति तेजी से बढ रही है । इस संस्कृतिक परिवेश में मानवता का बचे रहना असंभव-सा है। तमाम विरोधों के बावजूद लीलाधर जगूड़ी की कविता संस्कृति को बनाए रखने का समर्थन करती है, क्योंकि उनका मानना है कि संस्कृति की सुरक्षा में ही हम अभी तक जीवित है, वरन् शहरी सभ्यता, पश्चिमी संस्कृति और औद्योगिकीकरण के इस परिवेश में मनुष्यता का बचे रहना असंभव-सा है। कवि का मानना है कि इस संस्कृति को महसूस करो, क्योंकि ये अभी हममें बची हुई है, अभी इसने हमें संभाल रखा है -

''हर कहीं से इस जमीन ने हमें
तसले की तरह संभाल रखा है
पता नहीं मनुष्य में है या मशीन में सुख
फिर भी धीरे चीरों ! हममे पीड़ा अभी शेष है।''[6]

बनारस, कोल्हापुर जैसे शहरों की सांस्कृतिक विरासत है। बनारस शहर को एक इतिहास है हिंदु धर्मियों के लिये यह शहर श्रद्धा का स्थान है । आज आधुनिककरण के करण समाज को इस शहर की सांस्कृतिक विरासत तथा इतिहास से मतलब नहीं रहा । ऐतिहासिक संदभों से आज व्यक्ति कट चुका है। हमारी सांस्कृतिक विरासत अब अर्थव्यवस्था तक पहुंच चुकी है। बनारस की पहचान अब सारी के लिए हो गई है । बनारस का शालू या सिल्क सारी समाज में प्रसिद्ध है। वैसे ही कोल्हापुर की बात है कोल्हापुर जूतों के लिए प्रसिद्ध हुआ है । किसी स्थान का परिचय अपना ऐतिहासिक और सांस्कृतिक संदर्भ खोकर केवल आधिक उपयोगिता की दृष्टि से आँका जाने लगा है। जगूड़ी की कविता इसकी सशक्त अभिव्यक्ति है-

''किसी भी शहर को अब कोई नहीं जानता
कि उसके इतिहास से
कोई उसे जानता है भाल के भाव से
कोई कपड़े के
कोई जूते के भाव से जानता है।''[7]

विवाह दो जिस्मों का केवल मिलन नहीं तो दो परिवार और उनकी संस्कृति का मिलाप होता है पहले विवाह पारंपरिक मूल्यों का निर्वाह करने के लिए किए जाते थे परिवार में आने वाली बहू उसका एक अलग स्थान रहता था परिवार में उसका दायरा दहलीज तक ही सीमित था आज आधुनिक युग में बदलती संस्कृति के कारण स्त्री घर से बाहर निकली है वह आर्थिक रुप से निर्भर हो गई है जो सुंदर स्त्रिया होती है वे हमेशा किसी धुन में रहने लगी है आज बहू के रूप में ऐसे कल्पवृक्ष की अपेक्षा की जा रही है, जो अपनी कमाई से सबकी इच्छाओं की पूर्ति कर सके । इस बदलती संस्कृति का चित्रण कवि ने इस प्रकार किया है -

-'वे स्त्रियाँ सुंदर होती हैं, जो निकम्मी नहीं होती।'
सुंदर होते हैं वे पुरुष जो निठ्ठले नहीं होते
कोरे नौकरी के अलावा भी कुछ काम करते हैं
जो स्त्रियां सुंदर होती हैं वे हमेशा किसी धुन में रहती हैं[8]

बाजारवादी संस्कृति में व्यक्ति की संस्कृति, आदर्श, संकल्प सभी दाँव पर लग गए हैं । संस्कृति इतनी तेजी से बदल रही है कि लोगों को शरीर का पसीना भी पसंद नहीं है । पसीने से बचने के लिए हजार उपाय ढूंढे जा रहे हैं । खुली हवा में कसरतें करने के बजाय बंद कमरे में कसरतें की जा रही हैं । इससे व्ययशक्ति और क्रयशक्ति का अपव्यय हो रहा है । बदलती संस्कृति में सुंदर स्त्री की समस्या पसीना बन गयी है । कवि जगूडी ने इसका यथार्थ रूप में चित्रण किया है ।

''पसीने से बचने के हजार उपाय करते हुए जीना
और फिर पसीना निकालने के लिए महँगी मशीन पर व्यायाम करना
अपव्यय नहीं बल्कि व्ययशक्ति और क्रयशक्ति का मामला है
वायुशक्ति में साँस लेते-लेते क्षीण होती हुई आयुशक्ति
उस सुंदर स्त्री की भी समस्या है''[9]

कवि जगूडी ने सांस्कृतिक विरासत की उपेक्षा पर अपनी चिंता व्यक्त की है।

ISSN No. 2394-5990

निष्कर्ष रूप में कहा जाता है कि समाज की बदलती संस्कृति के कारण समाज में आधुनिक जीवन शैली आयी है । आधुनिक जीवन शैली के कारण माता-पिता के पास बच्चों पर संस्कार करने के लिए समय नहीं है । जिससे बच्चे बिघड रहें है । महानगर में सरलता, अपनापन, संबंधों की ऊष्मता समाप्त होती जा रही है । मनुष्यों की बाढ़ में आदमी अकेला होता जा रहा है । बाजारवादी संस्कृति तेजी से बढने के कारण चकाचौंध बढ रही है । शहरी सभ्यता, पश्चिमी संस्कृति और औद्योगिकीकरण के इस परिवेश में मनुष्यता का बचे रहना असंभव-सा है। सांस्कृतिक संदर्भ खोकर केवल आधिक उपयोगिता की दृष्टि से आँका जाने लगा है। बदलती संस्कृति से व्ययशक्ति और क्रयशक्ति का अपव्यय हो रहा है श्रआज बदलती संस्कृति में मानव पीछे - हटता जा रहा है। मानव मूल्य दिन प्रतिदिन नष्ट होते जा रहे हैं। परंतु भारतीय संस्कृति ही मानव को जीना - सीखाती है ।

संदर्भ सूची :

1. संपा. श्री नवलजी,नालंदा विशाल शब्दसागर, पृ. 1388
2. लीलाधर जगूड़ी - भय भी शक्ति देता है , राजकमल प्रकाशन , दिल्ली सं. 2017 - पृ.13
3. वही, पृ. 115
4. वही, पृ. 102
5. समकालीन भारतीय साहित्य (जुलाई-अगस्त 2011) - 'विज्ञापन सुंदरी'- लीलाधर जगूडी, पृ. 25
6. लीलाधर जगूड़ी - भय भी शक्ति देता है , राजकमल प्रकाशन, दिल्ली सं. 2017 पृ. 101
7. वही, पृ. 86
8. वही, पृ. 84
9. समकालीन भारतीय साहित्य (जुलाई-अगस्त 2011) - 'विज्ञापन सुंदरी'- लीलाधर जगूडी, पृ. 25

■■■